स्पिलओवर और संक्रमण कम करना: वैश्विक वित्तीय संकट से सबक *

डी. सुब्बाराव

1. ''स्पिलओवर और संक्रमण कम करना - वैश्विक वित्तीय संकट से सबक'' विषय पर आरबीआइ-बीआइएस के इस सेमिनार के अवसर पर भारत में हैदराबाद के निराले शहर में आये अंतरराष्ट्रीय प्रतिनिधि मंडल के सभी सदस्यों का भारतीय रिज़र्व बैंक की ओर से स्वागत करने में मैं प्रसन्नता का अनुभव कर रहा हूँ।

सेमिनार संदर्भ

2. यह सेमिनार आरबीआइ द्वारा आयोजित किया गया दूसरा क्रमिक बीआइएस सेमिनार है और अंतरराष्ट्रीय निपटान बैंक (बीआइएस) तथा भारतीय रिज़र्व बैंक (आरबीआइ) के बीच बौद्धिक सहयोग की दिशा में मील का पत्थर है। मैं इस सेमिनार के आयोजन का अवसर देने के लिए बीआइएस के प्रबंधन को धन्यवाद देना चाहता हूं।

3. मैं समझता हूँ इस सेमिनार के विषय ''स्पिलओवर और संक्रमण कम करना -वैश्विक वित्तीय संकट से सबक'' को कई महीने पहले तय किया गया था। वैश्विक वित्तीय संकट अब मुख्य पृष्ठ का प्रमुख समाचार बन गया है। मैं सेमिनार के आयोजकों, विशेष रूप से बीआइएस के श्री मर गुडमुंडसन और आरबीआइ के भूतपूर्व गवर्नर, डा.वाइ.वी.रेड्डी के प्रति आभार व्यक्त करना चाहता हूँ कि उन्होंने हम में से बहुत लोगों से पहले ही इस संकट की गहराई और फैलाव को भांप लिया और सेमिनार के लिए इस विषय को चुना।

वैश्विक वित्तीय आर्थिक परिदृश्य

4. वैश्विक वित्तीय स्थिति अनिश्चित और अव्यवस्थित बनी हुई है। अमरीकी आवास बंधक क्षेत्र में सब-प्राइम संकट के रूप में जो शुरुआत हुई, वह अब उत्तरोत्तर रूप से वैश्विक बैंकिंग संकट, वैश्विक वित्तीय संकट और अब वैश्विक आर्थिक संकट के रूप में बदल गई है। अर्थशास्त्र

* 4 दिसंबर 2008 को हैदराबाद में ''स्पिलओवर और संक्रमण कम करनाः वैश्विक वित्तीय संकट से सबक'' विषय पर आरबीआइ-बीआइएस के सेमिनार के अवसर पर भारतीय रिज़र्व बैंक के गवर्नर डॉ.डी. सुब्बाराव द्वारा दिया गया भाषण।

की पाठ्य पुस्तक में प्रायः आवास को गैर-विपणनीय वस्तु के रूप में प्रमुख उदाहरण स्वरूप पेश किया जाता है। यह विरोधाभाष है कि आवास के रूप में सर्वोत्कृष्ट गैर-विपणनीय वस्तुओं के उदाहरण ने वैश्विक स्तर के संकट को उत्पन्न किया। वित्तीय वैश्वीकरण की ऐसी गहनता और विस्तार है। अब तक का सबसे अधिक बार-बार पूछे जानेवाला प्रश्न यह है कि क्या वित्तीय क्षेत्र की मंदी और विशेष रूप से, वित्तीय संस्थाओं की असफलता के रूप में, सबसे बड़े दुर्दिन हमारा पीछा कर रहे हैं। कोई भी वास्तव में इसका स्पष्ट उत्तर देना नहीं चाहता, जो अज्ञात अनिश्चितताओं की लंबी कतार का संकेतक है।

5. वैश्विक आर्थिक परिदृश्य पिछले दो महीनों में तेजी से विघटित हुआ है। कई अर्थशास्त्री अब 1970 के दशक के बाद की सबसे भारी वैश्विक मंदी की भविष्यवाणी कर रहे हैं। आइएमएफ ने अक्तूबर के प्रारंभ में प्रकाशित अपने वर्ल्ड इकोनॉमिक आउटलुक में 2008 में 3.9 प्रतिशत वैश्विक वृद्धि और 2009 में 3.0 प्रतिशत की वृद्धि की भविष्यवाणी की थी। आइएमएफ ने अब वैश्विक वृद्धि की अपनी भविष्यवाणी को संशोधित कर 2008 के 3.7 प्रतिशत से घटाकर 2009 के लिए 2.2 प्रतिशत कर दी है। उल्लेखनीय रूप से, एक समूह के रूप में उन्नत अर्थव्यवस्थाओं की वृद्धि दर 2009 में 0.3 प्रतिशत कम होने का अनुमान लगाया गया है। यदि ये निराशाजनक परिणाम वास्तव में सच हो गया, तो 2009 ऐसा पहला वर्ष होगा जब उभरती अर्थव्यवस्थाओं की वृद्धि दर वैश्विक वृद्धि दर के 100 प्रतिशत से भी अधिक होगी।

उभरती अर्थव्यवस्थाएं

6. 2009 में उभरती अर्थव्यवस्थाएं संभवतः वैश्विक वृद्धि में एक मात्र योगदान करनेवाली रहीं हैं, लेकिन उन पर भी संकट का बुरा आघात हुआ है। यह विडंबनापूर्ण है कि हाल में छह महीने पहले तक भी, 'डिकपलिंग थ्योरी' का समर्थन करना बुद्धिमानी मानी जाती थी और यह कहा जाता था कि यदि उन्नत अर्थव्यवस्थाओं में मंदी आ भी जाए, तो खराब से खराब स्थिति में, उभरती अर्थव्यवस्थाओं में इसका मामूली-सा ही प्रभाव होगा, और वे किसी तरह अपने आप इस स्थिति से पार निकल जाएंगी। तेजी से वैश्विीकृत होते विश्व में, डिकपलिंग थ्योरी कभी भी प्रत्ययकारी नहीं रही; पिछले कुछ महीनों के साक्ष्य अर्थात पूंजी प्रवाह विपर्ययन, सरकारी और कंपनी ऋण के बीच तेजी से बढ़ते अंतर, और मुद्राओं के तीव्र मूल्यन्स को देखते हुए, डिकपलिंग थ्योरी की विश्वसनीयता लगभग पूरी तरह से खत्म हो गई है। उभरती अर्थव्यवस्थाओं की वृद्धि संभावनाएं जारी संकट से निश्चित रूप से कमतर हुई हैं हालांकि विभिन्न देशों के बीच इसमें काफी अंतर है। आइएमएफ ने 2009 के लिए उभरती अर्थव्यवस्थाओं की वृद्धि संबंधी अपनी भविष्यवाणी को संशोधित कर अक्तूबर के प्रारंभ के 6.1 प्रतिशत से 5.1 प्रतिशत कर दिया। स्पष्ट रूप से उभरती अर्थव्यवस्थाओं को कष्टप्रद समायोजन करना पड़ रहा है।

संकट का भारत पर प्रभाव

7. भारत को भी संकट के नकारात्मक प्रभाव बर्दाश्त करने होंगे। यद्यपि उपभोग और घरेलू निवेश हमारी वृद्धि के प्रमुख प्रेरक बने हुए हैं, विश्व में भारत का समन्वयन बढ़ता जा रहा है। वैश्वीकरण के सामान्य मापन को दृष्टि में रखते हुए, जीडीपी के अनुपात के रूप में, भारत का दु-तरफा व्यापार (पण्य माल निर्यात + आयात) एशियाई संकट के वर्ष अर्थात 1997-98 के 21.2 प्रतिशत से बढ़कर 2007-08 में 34.7 प्रतिशत हो गया। यदि हम वैश्वीकरण की विस्तारित माप अर्थात जीडीपी की तुलना में सकल चालू खाता और सकल पूँजी प्रवाह अनुपात को ध्यान में रखें तो यह अनुपात 1997-98 के 46.8 प्रतिशत से बढ़कर 2007-08 में 117.4 प्रतिशत हो गया हैं। ये आंकड़े स्पष्ट प्रमाण हैं कि पिछले 10 वर्ष में विश्व अर्थव्यवस्था के साथ भारत का समन्वयन बढ़ा है।

8. मानव इतिहास में कोई भी क्रांति पूरी तरह अनुकूल नहीं रही है। यही बात वैश्वीकरण के संबंध में लागू होती है, वैश्वीकरण लाभ के साथ हानियां भी लेकर आता है। वैश्वीकरण का प्रबंधन करने के लिए आवश्यक है कि हम लागत को कम से कम करें और लाभ को अधिक-से-अधिक बढ़ाएं। भारत को निःसंदेह रूप से विश्व के साथ समन्वयन करने से लाभ हुआ है। परिणाम के रूप में, हमें विश्व के साथ जुड़ने के प्रतिकूल प्रभावों का भी प्रबंधन करने की आवश्यकता होगी, जैसा कि वर्तमान संदर्भ से स्पष्ट है।

9. भारतीय बैंकिंग प्रणाली का प्रत्यक्ष रूप से सब प्राइम बंधक आस्तियों के प्रति एक्सपोज़र नहीं है। इसका अमरीकी बंधक मार्केट अथवा असफल संस्थाओं अथवा समस्याग्रस्त आस्तियों के प्रति बहुत सीमित एक्सपोज़र है। सार्वजनिक और निजी दोनों क्षेत्रों के भारतीय बैंक वित्तीय रूप से सुदृढ़, भली प्रकार पूंजीकृत और सुविनियमित हैं। इस सबके बावजूद, भारत मौद्रिक वित्तीय, और वास्तविक चैनल के माध्यम से वैश्विक संकट के अप्रत्यक्ष प्रभाव का अनुभव कर रहा है। हमारे वित्तीय बाजार - इक्विटी बाजार, मुद्रा बाजार, विदेशी मुद्रा बाजार और ऋण बाजार, सभी मुख्य रूप से जिसे हमने 'प्रतिस्थापन प्रभाव' कहना शुरू किया है, के करण दबाव के अंतर्गत आ गये हैं। चूंकि विदेश में ऋण उपलब्धता (क्रेडिट लाइन) और ऋण चैनल शुष्क हो गये हैं, कुछ ऋण मांग, जो पहले विदेशी वित्तीयन द्वारा पूरी की जाती थी, घरेलू ऋण क्षेत्र की ओर अंतरित हो रही है, जो घरेलू संस्थानों पर दबाव डाल रही है। पूंजी प्रवाह के विपर्ययन, जो वैश्विक डिलीवरेजिंग प्रक्रिया के कारण होते हैं, विदेशी मुद्रा बाजार पर दबाव डाल रहे हैं। अक्तूबर 2008 में देश में ओवरनाइट मुद्रा बाजार दरों में तीव्र उतार-चढ़ाव और रुपए के मूल्य में गिरावट ने वैश्विक ऋण की कमी और डिलीवरेजिंग प्रक्रिया के संयुक्त प्रभाव को दर्शाया।

10. भारत के लिए भावी संभावना मिश्रित है। आर्थिक गतिविधियों में मंदी के लक्षण उभरे हैं। साथ ही, हेडलाइन मुद्रास्फीति, जो थोक मूल्य सूचकांक द्वारा मापी जाती है, तेजी से घटी है और यह गिरावट पिछले तीन हफ्तों से बनी हुई है, जो मुद्रास्फीति में प्रत्याशा से ज्यादा कमी की ओर संकेत करती है। स्पष्ट रूप से, वस्तुओं के गिरते दाम अवस्फीति के प्रमुख प्रेरक बने हुए हैं; तथापि कुछ योगदान घटती घरेलू मांग ने भी किया है। निश्चित तौर पर, सितंबर और अक्तूबर 2008 के महीने में उपभोक्ता मूल्य मुद्रास्फीति बढ़ी।यह संभवतः खाद्य वस्तु मुद्रास्फीति के बढ़ते रुझान और उपभोक्ता मूल्य मुद्रास्फीति के मापन में खाद्य वस्तुओं के अधिक भार के कारण है। ऐतिहासिक रूप से, थोक और उपभोक्ता मूल्य मुद्रास्फीति के बीच सकारात्मक सह-संबंध बना हुआ है, और इस सह-संबंध को देखते हुए उपभोक्ता मूल्य मुद्रास्फीति के आगामी महीनों में कम होने की आशा की जा सकती है।

11. रिज़र्व बैंक की मौद्रिक नीति का रुझान वृद्धि, मुद्रास्फीति और वित्तीय स्थिरता की चिंताओं को संतुलित करना रहा है। जब इस वर्ष के प्रारंभ में मुद्रास्फीति तेजी से बढ़ी तो आरबीआइ को नीति में तुरंत कड़ापन लाना पड़ा। पुनः, वैश्विक घटनाक्रम की स्थिति और मुद्रास्फीति में गिरावट की प्रत्याशा को दर्शाते हुए, आरबीआइ ने पिछले कुछ महीनों में अपने मौद्रिक रुझान को समायोजित किया है। घरेलू और विदेशी मुद्रा दोनों की चलनिधियों का प्रबंधन करना और यह सुनिश्चित करना कि ऋण उत्पादक कार्यों के लिए दिए जाते रहें, ऐसा हमारी मौद्रिक नीति का प्रयास रहा है।

12. मैं यहां किए गये सभी उपायों की विस्तृत सूची प्रस्तुत नहीं करना चाहता हूँ, लेकिन इस बात का मैं अवश्य उल्लेख करना चाहता हूँ कि हमने सामग्रिक उपाय और सेक्टर विशिष्ट उपाय दोनों किए हैं। यद्यपि, हम वैश्विक वित्तीय और आर्थिक गतिविधि के प्रति सुभेद्य बने हुए हैं, अब तक किये गये उपायों ने चलनिधि और ऋण प्रवाह की स्थिति को काफी अधिक आसान बनाया है। मैं यह भी कहना चाहूँगा कि

वैश्विक संकट के प्रभाव का प्रबंधन करते समय हमें यह भी ध्यान रखना है कि कोई भी नीतिगत उपाय पूरी तरह से लागतविहीन नहीं होता। लागत और लाभ के बीच इस नाजुक संतुलन का प्रबंधन करना हमारे लिए एक चुनौती है।

13. आगे, वास्तविक अर्थव्यवस्था वित्तीय बाजार और वैश्विक पण्य मूल्य संबंधी गतिविधियां घटती मुद्रास्फीति के साथ वृद्धि में होने वाली कमी की ओर संकेत करती हैं। हमारी अर्थव्यवस्था के मूलभूत तत्व सुदृढ़ बने हुए हैं। एक बार वैश्विक बाजार में शांति और विश्वास के वापस लौट आते ही भारत की आर्थिक गतिविधि में तेजी से सुधार होगा। लेकिन कष्टप्रद समायोजन की अवधि से गुजरना अपरिहार्य है।

14. रिज़र्व बैंक की नीति का प्रयास होगा कि सुव्यवस्थित रूप से समायोजन हो और इसके प्रभाव का कष्ट कम से कम हो। विशेष रूप से, हम पर्याप्त चलनिधि स्थिति को बनाए रखने का प्रयास करेंगे, यह सुनिश्चित करेंगे कि भारित औसत ओवरनाइट मुद्रा बाजार दर रिपो - रिवर्स रिपो की सीमा के अंदर बनी रहती है और हम उत्पादक क्षेत्रों के लिए ऋण प्रवाह की अनुकूल दशाएं सुनिश्चित करेंगे विशेष रूप से स्ट्रेसवाले निर्यात और छोटे तथा मझौले उद्यम क्षेत्रों के लिए। हम आशा करते हैं कि सभी आर्थिक एजेंट इस आश्वासन के आधार पर अपनी कारोबार गतिविधियों की योजना बनाएंगे।

संकट से सबक

15. यह संकट अभी खत्म नहीं हुआ है। इसलिए किसी निष्कर्ष पर पहुंचना थोड़ी-सी जल्दबाजी होगी। कुछ और बिल्कुल नई बात भी सामने आ सकती है फिर भी, इसे समझने के लिए हमें मिलकर विचार करना आवश्यक होगा कि कैसे हम यहां तक पहुंचे और कैसे हम भविष्य में गलतियों और असंयमों से बच सकते हैं। मेरे लिए आपके द्वारा चर्चा के लिए प्रस्तुत किए जाने वाले विषय से जुड़ी सभी पहलुओं के बारे में अनुमान लगाना कठिन होगा। आपके सामूहिक अनुभव और विशेषज्ञता को देखते हुए, वह वास्तव में एक बड़ा योगदान होगा। लेकिन मैं इस संकट से उत्पन्न कुछ और अधिक महत्वपूर्ण बहस के लिए इस अवसर का लाभ उठाना चाहूँगा। मैं बहस के पांच मुद्दों का जिक्र करना चाहूँगा।

बहस का पहला मुद्दाः हम कैसे वैश्विक असंतुलनों का प्रबंध करेंगे?

16. आम धारणा के अनुसार, 15 सितंबर 2008 को हुए लीमन ब्रदर्स के विघटन को वैश्विक संकट शुरू करने वाला माना जाएगा। कुछ हद तक, यह बात सच हो सकती है। वास्तव में, मैं स्पष्ट देख रहा हूँ कि आगे कई वर्षों बाद हम इस विख्यात प्रतिकारी तथ्य पर जोश खरोश के साथ वाद-विवाद कर रहे होंगे कि ''यदि लीमेन को विघटित नहीं होने दिया जाता, ...''

17. तथापि, यदि हम थोड़ी गहराई में देखें, तो हम 1990 के दशक और इस शताब्दी के पहले दशक के दौरान वैश्विक असंतुलन के संकट के उद्भव का पता लगा सकेंगे। वास्तव में यह एक अलग वाद-विवाद का विषय है कि ये असंतुलन किस कारण से हुए? क्या यह अमरीका में अत्यधिक उपभोग के कारण है, अथवा उभरती एशिया में बचत की अधिकता के कारण है जिसमें अमरीका ने 'अंतिम उपभोक्ता' के रूप में इसकी मदद की?

18. चाहे जो भी हो, उन प्रमुख प्रवृत्तियों पर बहुत कम असहमति है जिनसे असंतुलन पैदा हुए। पहली प्रवृत्ति है श्रम का वैश्वीकरण होना है। उभरते एशिया से श्रम के विश्व पूल में लगभग 3 बिलियन की वृद्धि हुई क्योंकि यह 1900 के दशक से विश्व के साथ समन्वित हो गई। इसने समग्र स्तर पर उत्पादन लागत को घटाया और एशिया के तुलनात्मक

लाभ को बढ़ाया। सीधे से कहें तो एशिया ने उत्पादन किया और अमरीका ने उपभोग किया। एशिया की अर्थव्यवस्थाओं के व्यापार खाते में भारी बचतें दिखने लगी जिसे अमरीका के चालू खाते के घाटे के रूप में देखा जा सकता है। यह भौगोलिक बचत-उपभोग असंतुलन सहज रूप से अस्थायी था, लेकिन हमने इसे मानने से मना कर दिया। इसके स्थान पर, हम यह विश्वास करके चुप बैठ गये कि हम एक ऐसे युग में प्रवेश कर गये हैं जिसे बैंक ऑफ इंग्लैंड के मर्विन किंग 'नाइस' युग कहते थे अर्थात 'नॉन- इन्फ्लेशनरी कंसिसटेंटली एक्सपेंशनरी' युग। ये असंतुलन ही थे जिन्होंने चलनिधि को आसान बनाया और ब्याज दरों को कम किया जिससे जोखिम के कम मूल्यांकन तथा ऋण गुणवत्ता में गिरावट को प्रोत्साहन मिला।

19. अतः चर्चा का मुद्दा यह है कि क्या हम भविष्य में वैश्विक असंतुलन के बढ़ने को रोक सकते हैं? एक तर्क यह है कि विश्व के जनांकिकीय स्वरूप को देखते हुए वैश्विक असंतुलन अपरिहार्य है। उभरती अर्थव्यवस्थाएं सामान्यतः युवा जनसंख्या वाली हैं जिनकी बचत करने की सीमांत प्रवृत्ति अधिक है। इसके विपरीत, अधिक आयु की जनसंख्या वाले उन्नत देशों की उपभोग की सीमांत प्रवृत्ति अधिक है। यदि बचत की मांग और पूर्ति का वैश्विक स्तर पर स्वरूपतः मिलान किया जाय, तो हम वैश्विक असंतुलन के पुनः उभरने को कैसे रोक सकते हैं?

बहस का दूसरा मुद्दाः क्या स्व-बीमा उभरती अर्थव्यवस्थाओं के लिए एक व्यवहार्य विकल्प है?

20. पीटरसन इंस्टिट्यूट फॉर इंटरनेशनल इकॉनोमिक्स के अरविंद सुब्रमणियन ने पिछले हफ्ते बिजनेस स्टैंडर्ड में एक लेख में वित्तीय संकट का सामना करने के लिए बफर के रूप में विदेशी मुद्रा के संचयन के स्व-बीमा के मुद्दे को उठाया था। एशियाई संकट के पश्चात, पूर्व एशिया के देशों ने स्व-बीमा की एक सोची-समझी नीति के रूप में विशाल भंडार बनाया। चीन और भारत ने भी विदेशी मुद्रा भंडार बनाये, जिसमें यद्यपि काफी अंतर है। चीन का विदेशी मुद्रा भंडार चालू खाता के अधिशेष के कारण है तथा इसलिए ये भाररहित आस्तियां हैं, जबकि भारत का विदेशी मुद्रा भंडार पूंजी प्रवाह से बना है, और इसलिए इस पर देयताओं का भार है। यह विदेशी मुद्रा भंडार की मजबूत स्थिति है जिसने उभरती अर्थव्यवस्थाओं को जारी संकट के सबसे बुरे प्रभाव का सामना करने की शक्ति प्रदान की है।

21. जैसा कि खुद सुब्रमणियन का तर्क है, स्व-बीमा, वास्तव में, लागतरहित नहीं है। विदेशी मुद्रा भंडार वस्तुतः चालू खाता के अधिशेषों के माध्यम से बनाया जाना चाहिए। इससे बाह्य क्षेत्र, विशेष रूप से निर्यात पर और अधिक निर्भरता होगी लेकिन निर्यात पर ऐसी निर्भरता देयता बन सकती है यदि निर्यात मांग कम होती है जो उभरती अर्थव्यवस्था के बर्हिजात कारणों से हो सकती है। यह स्पष्ट रूप से तालमेल की स्थिति है। स्व-बीमा, जिसे बहुत अधिक निर्यात के माध्यम से संचित हुए विदेशी मुद्रा भंडार के रूप में परिभाषित किया गया, वित्तीय संक्रमण से सुरक्षा प्रदान करता है, लेकिन यह अर्थव्यवस्था को व्यापार संक्रमण के प्रति भेद्य बनाता है। हम वित्तीय संक्रमण की भेद्यता और व्यापार संक्रमण की भेद्यता के बीच इस तालमेल को कैसे संतुलित रख सकते हैं?

22. दूसरा संबद्ध मुद्दा है कि स्व-बीमा आवश्यक नहीं भी हो सकता है, वास्तव में यह अतिरिक्त हो सकता है, यदि अंतरराष्ट्रीय सामूहिक व्यवस्थाएं - क्षेत्रीय अथवा बहुमुखीय- संकट के दौरान आसान, तुरंत और बिना शर्त चलनिधि उपलब्ध करा सकती हैं। उदहारण के लिए, स्व-बीमा के लिए प्रेरणा कम विवशकारी होगी यदि बाजार पहुंच वाले देशों के लिए हाल में स्थापित की गयी आइएमएफ की अल्पकालिक चलनिधि सुविधा अथवा अमरीकी फेडरल रिज़र्व द्वारा चुनिंदा देशों को प्रदान की गयी स्वैप सुविधा और अधिक सामान्य हो जाती है और सापेक्षिक रूप से कम लेन-देन लागत द्वारा उन तक पहुंचा जा सकता है।

23. अतः चर्चा का दूसरा विषय जिसे मैं उठाना चाहता हूं वह हैः ''क्या स्व-बीमा उभरती अर्थव्यवस्थाओं के लिए व्यवहार्य नीति विकल्प है?''

बहस का तीसरा मुद्दाः कैसे हम वित्तीय क्षेत्र के विनियम में सुधार कर सकते हैं?

24. अब तक, संकट ने जिस सर्वाधिक विवादित और सर्वाधिक मूल्यवान वाद-विवाद को जन्म दिया है वह विनियामक ढांचे की कमियों के बारे में रहा है। मैं उनमें से कुछ पर चर्चा करूंगा। कैसे जटिल डेरिवेटिव उत्पाद को, जिसने प्रणाली के अंदर जोखिम संप्रेषित किया, और पारदर्शी बनाया जा सकता है? क्या एक्सचेंज में ट्रेड किये जाने वाले डेरिवेटिव ओवर दी काउंटर (ओटीसी) डेरिवेटिव से बेहतर हैं? कैसे हम ''ओरिजिनेट-टू- डिस्ट्रीब्यूट'' मॉडल की कमियों को समाप्त कर सकते हैं? क्या सार्वभौमिक बैंकिंग, जो मॉडल अमेरिका ने अपनाया है, उपयुक्त है? क्या हम थोक और खुदरा बैंकिंग दोनों के लिए एक ही विनियामक प्रणाली लागू कर सकते हैं?

25. उपर्युक्त सभी प्रश्नों का दबाव है कि वर्तमान विनियामक प्रणाली में कमियों को कैसे पहचाना जाए और संभावित समाधान ढूंढे जाये। इसमें संदेह नहीं है कि हमें इन सभी प्रश्नों पर कार्य करना चाहिए। ऐसा करते समय, मैं कहना चाहूँगा कि हमें दो बातें याद रखनी हैं। पहली बात यह याद रखनी है कि एक ही नियम सभी स्थितियों के लिए उपयुक्त नहीं होता। उदाहरण के लिए, सार्वभौमिक बैंकिंग कुछ देशों और कुछ स्थितियों के लिए अच्छी हो सकती है तथा अन्यों के लिए नहीं। दूसरी बात याद रखनी है कि कुछ विनियमन, तार्किक तौर पर, अपेक्षा से कमतर हो सकते हैं। इससे इनकार नहीं किया जा सकता कि विनियमों को वित्तीय बाजार के नवोन्मेषों के साथ चलना होगा लेकिन ऐसा करते समय, हमें विनियमों में ज्यादा कड़ाई के जोखिम को ध्यान रखना होगा ऐसा न हो कि नवोन्मेषों का गला घुट जाए।

26. विनियम में सुधार के विषय पर, जोखिम प्रतिरूपण का भी और बड़ा प्रश्न है। वास्तव में जोखिम की संभाव्यता सामान्य वितरण के सिद्धांत पर चलती हैं- जिसे सामान्यतया बेल कर्व कहा जाता है। लेकिन हमारी विनियामक व्यवस्था को केंद्रीय, बेल कर्व के अत्यधिक संभाव्यता वाले भाग की स्थिति से निपटने के लिए बनाया गया है। हमने वक्र के लाँग टेल में स्थित ब्लेक स्वॉन की अनदेखी की। अब पीछे मुड़कर देखने पर पता चला है कि यह एक घातक त्रुटि थी। यह ब्लेक स्वॉन कम संभाव्यता, अत्यधिक जोखिम घटना जो प्रणालीगत जोखिम प्रस्तुत करती है, का प्रतिनिधित्व करता है। जबकि हमारी विनियामक व्यवस्था को संस्थागत असफलताओं से निपटने के लिए बनाया गया है, वे प्रणालीगत असफलताओं से निपटने के लिए सुसज्जित नहीं हैं।

27. अतः चर्चा के मुद्दे नीचे दिये जा रहे हैं। वर्तमान विनियामक व्यवस्था की कौन-कौन सी त्रुटियां हैं? हम उनका कैसे समाधान करेंगे? इस संबंध में किस प्रकार अंतरराष्ट्रीय सहयोग लिया जा सकता है? हम कैसे ब्लेक स्वॉन प्रणालीगत जोखिम की घटनाओं का निराकरण कर सकेंगे?

बहस का चौथा मुद्दाः हम विनियामक आर्बिट्रेज की स्थिति का समाधान कैसे करें?

28. पूरे संसार में, बैंकिंग प्रणाली का संचालन करने वाली विनियमावली इस अनुमान पर काफी सख्त बनाई गई हैं कि जमाकर्ताओं के हितों की सुरक्षा करने की आवश्यकता है। लेकिन विनियामकों के दायरे में 'शैडो बैंकिंग प्रणाली' का एक बड़ा व्यापक और जटिल नेटवर्क पनपा, जिसमें हेज फंड, दलाल - व्यापारी, निजी इक्विटी निधियां, सुनियोजित निवेश वाहक और मध्यस्थ (कंडूइट), तथा मुद्रा बाजार निधियां शामिल हैं। यह शैडो बैंकिंग प्रणाली मूलतः काफी अधिक लिवरेज्ड थी, और इसका बैंकिंग प्रणाली के साथ व्यापक संपर्क था। लेकिन शैडो बैंकिंग प्रणाली को काफी

कम विनियमों का सामना करना पड़ा। इस 'विनियामक आर्बिट्रेज' ने शिथिल व्यवहारों, तुरंत आय की खोज और कम पारदर्शी तथा जोखिम पूर्ण वित्तीय उत्पादों को प्रेरित किया। जब प्रणाली में खुलाव शुरू हुआ तो यह महसूस किया गया कि शैडो बैंकिंग प्रणाली की इन संस्थाओं में से कुछ बैंकों के समान प्रणालीगत जोखिम प्रस्तुत कर रहे हैं। इस कहानी से यह शिक्षा मिलती है कि यदि कोई संस्थान 'इतना बड़ा है कि उसे असफल होने नहीं दिया जा सकता' तो वह इतना बड़ा भी है कि शिथिल विनियमों के जरिए उसे छूट नहीं दी जा सकती।

29. अतः चर्चा का मुद्दा है, हम विनियामक आर्बिट्रेज की समस्या का समाधान कैसे कर सकते हैं?

बहस का पांचवां मुद्दाः हम वित्तीय क्षेत्र को वास्तविक क्षेत्र के अनुरूप कैसे रख सकते हैं?

30. अंत में, और शायद सबसे महत्वपूर्ण है, मैं वित्तीय इंजीनियरिंग की कार्यक्षमता के लाभों पर चर्चा करना चाहूंगा। हमने यह मान लिया कि प्रतिभूतियों को छोटे-छोटे अंशो में बांट देने से काफी अधिक मूल्य वृद्धि की जा सकती है। उदाहरण के रूप में, हमने मान लिया कि वित्तीय तत्वांतरण (अल्केमी) सब प्राइम मॉर्टगेज के 'लीड' अर्थात सीसे को 'एएए' प्रतिभूतियों के स्वर्ण और प्लेटिनम में बदल सकता है। कई प्रकार से, यह बीमारी काफी गंभीर थी। हम पहले के संकटों से कोई सीख नहीं ले सके। हमें जानना चाहिए था कि विनियंत्रित बाजार, अत्यधिक लिवरेज्ड खिलाडियों और विशाल पूंजी प्रवाह वाली आधुनिक वित्तीय प्रणाली अत्यन्त नाजुक है। हमें वित्तीय तत्वांतरण की चमक के पीछे पल रहे संकट को देखना चाहिए था। हमें विनियामक प्रणाली के शिथिल होने और समयानुकूल न होने पर ध्यान देना चाहिए था। बल्कि जो हुआ वह ठीक विपरीत था। इसने जटिलता, आधुनिकता और अलंकारिता के साथ वित्तीय क्षेत्र को वास्तव से बड़ा प्रोफाइल प्रदान किया। नरम आर्थिक परिवेश के कारण हमने इस विश्वास से अपने को धोखे में रखा कि वास्तविक जीवन की हरेक समस्या का, चाहे वह कितनी ही जटिल हो, वित्तीय समाधान होता है।

31. वित्तीय तत्वांतरण के सुखबोध में यह मूल सिद्धांत भुला दिया गया कि वित्तीय क्षेत्र की कोई स्वतंत्र हैसियत नहीं होती है, इसे अपनी शक्ति और सुदृढ़ता वास्तविक अर्थव्यवस्था से प्राप्त होती है। वित्तीय क्षेत्र वास्तविक क्षेत्र द्वारा संचालित होना चाहिए, न कि इसके विपरीत।

32. अतः, चर्चा का मुद्दा हैं कि हम वित्तीय क्षेत्र को वास्तविक क्षेत्र के अनुरूप कैसे रख पाते हैं?

सारांश और समापन

33. मैं वैश्विक वित्तीय संकट के सबकों से संबंधित पाँच चर्चाओं का समापन करना चाहता हूँ । सक्षिप्त में, पाँच चर्चाएं जो मैंने शुरू की वे हैं:

i) हम कैसे वैश्विक असंतुलनों का प्रबंध कर सकते हैं?

ii) क्या स्व-बीमा उभरती अर्थव्यवस्थाओं के लिए एक व्यवहार्य विकल्प है?

iii) कैसे हम वित्तीय क्षेत्र के विनियम में सुधार कर सकते हैं?

iv) हम कैसे विनियामक आर्बिट्रेज का निपटारा कर सकते हैं?

v) हम वित्तीय क्षेत्र को वास्तविक क्षेत्र के अनुरूप कैसे रख सकते हैं?

34. मैं जानता हूं कि मैंने यहां जिन मुद्दों की चर्चा की उनके अलावा ऐसे बहुत से अन्य महत्वपूर्ण मुद्दे हैं। मुझे आशा और विश्वास है कि हमें इन सभी मुद्दों पर चर्चा करने के लिए एक अवसर मिलेगा। मैं आशा करता हूं कि आप सबको अगले दो दिनों में बहुत कुछ जानने-सीखने को मिलेगा।